कॉन्स्टेंटिन पौस्टोव्स्की

लोहे की अंगूठी

कॉन्स्टेंटिन पौस्टोव्स्की
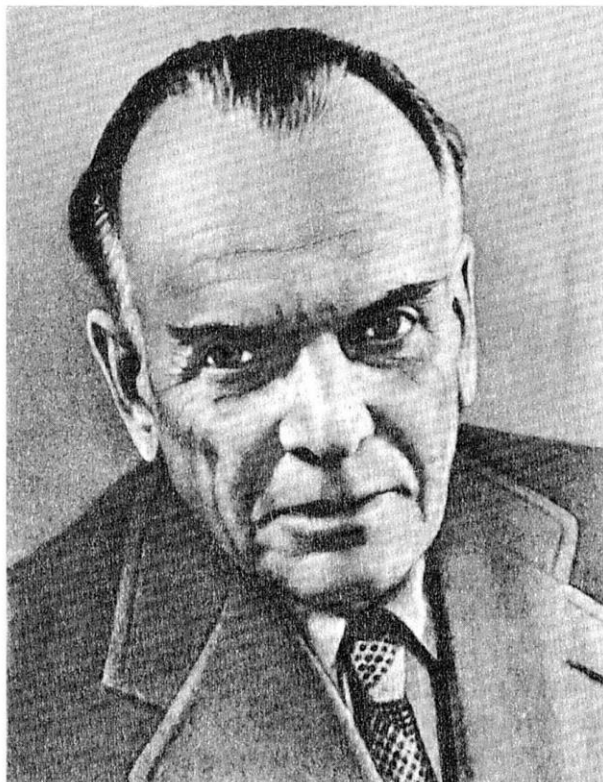
लोहे की अंगूठी

परी कथा

चित्र: एस बोर्डयुग

हिंदी: योगेन्द्र कुमार नागपाल

लेखक के बारे में

कॉन्स्टेंटिन पौस्टोव्स्की का जन्म 1892 में मास्को में हुआ था। उनके पिता एक रेलवे कर्मचारी थे। उन्होंने अपना बचपन यूक्रेन में बिताया, जहां वे कुछ समय एक गांव में और कुछ समय कीव में रहे। जिमनेशियम से स्नातक होने पर, पॉस्टोव्स्की ने कीव विश्वविद्यालय में प्रवेश किया।

बाद में उनका स्थानांतरण मॉस्को विश्वविद्यालय में हो गया, लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के फैलने से उनकी पढ़ाई बाधित हो गई। युद्ध की लगभग पूरी अवधि के दौरान उन्होंने स्ट्रेचर-वाहक के रूप में मोर्चे पर काम किया। लेखक ने कई व्यवसायों में अपना हाथ आज़माया: वह मॉस्को में एक स्ट्रीटकार मोटरमैन और कंडक्टर रहे, एक अस्पताल का अर्दल, दक्षिण में एक लोहे के कारखाने में मजदूर, आज़ोव सागर पर एक मछुआरे, एक नाविक, रूसी साहित्य के शिक्षक, और, अंततः, एक पत्रकार बने.

उनका उद्देश्य लोगों और विभिन्न व्यवसायों के बारे में जितना संभव हो उतना सीखना था। पॉस्टोव्स्की की पहली कहानी 1911 में कीव पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, और उनकी पहली पुस्तक 1926 में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद से उन्होंने खुद को पूरी तरह से लेखन के लिए समर्पित कर दिया। वह लगभग चालीस पुस्तकों के लेखक हैं, इसके अलावा कई लघु कथाएँ, रेखाचित्र और लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनके लेखन ने उन्हें *ऑर्डर ऑफ द रेड बैनर ऑफ लेबर* और "वीरतापूर्ण श्रम के लिए" पदक दिलाया है, दोनों सरकार द्वारा प्रदान किए गए हैं। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के दौरान लेखक दक्षिणी मोर्चे पर एक युद्ध संवाददाता थे।

मोखोबोये गांव में जंगल के बिल्कुल पास ही कुज़्मा दादा अपनी पोती वार्या के साथ रहते थे।

इस साल कड़ाके की सर्दी थी, तेज़ हवाएं चल रही थीं भर और खूब ज़ोरों से बर्फ पड़ रही थी। सारे जाड़े में एक बार भी पाला कम नहीं हुआ और बर्फ पिघलकर तख्तों की छत पर से टपाटप-टपाटप करती नहीं गिरी। रात को जंगल में ठंड से अकड़े भेड़िए हुआं-हुआं करते थे। कुज़्मा दादा कहते कि उन्हें लोगों से जलन होती है, इसीलिए हुआते हैं: भेड़िए भी झोंपड़े में रहना चाहते हैं, वे भी अलावघर के पास लेटकर ठंड से जमी प्रपनी झबरीली खाल गरम करना और खुजलाना चाहते हैं।

अभी जाड़ा आधा ही बीता होगा कि दादा का तंबाकू ख़त्म हो गया। दादा को ज़ोरों से खांसी आने लगी। वह सेहत ख़राब होने की शिकायत करते और कहते कि बस एक दो दम लगा लूं, तो आराम मिले।

इतवार को वार्या दादा के लिए तंबाकू लेने पास के गांव पेरेबोरी गई। गांव के पास से रेल की लाइन गुजरती थी। वार्या ने दादा के लिए तंबाकू खरीदा, उसे छींट की थैली में लपेटा और स्टेशन पर गाड़ियां देखने चली गई। पेरेबोरी में गाड़ियां बहुत कम ही रुकती थीं, ज्यादातर वे घड़घड़ाती हुई वहां से निकल जाती थीं।

प्लेटफॉर्म पर दो सिपाही बैठे थे। उनमें एक दाढ़ीवाला था, उसकी भूरी आंखें मुस्कराती लगती थीं। इंजन गरजा। वार्या ने देखा भाप से घिरा इंजन दूर काले जंगल से धमाधम स्टेशन की ओर चला आ रहा था।

"एक्सप्रेस आ रही है!" दाढ़ीवाले सिपाही ने कहा। "देख री मुनिया, उड़ा देगी तुझे गाड़ी। आसमान में उड़ जाएगी तू।"

हवा से बातें करता इंजन स्टेशन पर आ गया। प्लेटफॉर्म पर पड़ी बर्फ बबंडर सी उड़ने लगी और आंखों पर चिपक गई। फिर ठकाठक करते पहिए एक दूसरे के पीछे भाग चले। वार्या ने बिजली के खंभे को पकड़ लिया और आँखे बंद कर लीं: कहीं सचमुच ही यह बबंडर उसे ज़मीन से उठाकर गाड़ी के पीछे-पीछे उड़ा न ले जाए। गाड़ी निकल गई। धूल सी बर्फ अभी भी उड़ रही थी ओर धीरे-धीरे जमीन पर बैठ रही थी। दाढ़ीवाले सिपाही ने वार्या से पूछा:

"यह क्या है मुनिया, तेरी थैली में? तंबाकू है क्या?"

"तुंबाकू," वार्या ने जवाब दिया।

"कुछ बेच दे री। तंबाकू पीने को बहुत मन हो रहा।"

"कुज़्मा दादा ने बेचना मना किया है," वार्या ने सख्ती से कहा। "यह उनकी खांसी को दवा है।"

"अरी वाह री, दुशाले में लिपटी कली। बड़ी सख्त छोरी है तू," सिपाही बोला।

"पर तुम ऐसे ही ले लो, जितना चाहिए," वार्या ने कहा और थैली सिपाही की ओर बढ़ा दी। "लो, पी लो।"

सिपाही ने अपने खूब मोटे और बड़े ओवरकोट की जेब में मुट्ठीभर तंबाकू डाल ली, कागज में तंबाकू लपेटकर मोटी सी सिगरेट बनाई और पीने लगा। उसने वार्या की ठोढ़ी पकड़ी और मुस्कराते हुए उसकी नीली आंखों में देखा।

“अरी, वाह री, दो चुटियों की नीली कली,” सिपाही ने कहा। “तेरा अहसान कैसे चुकाऊं मैं? चल यह ही सही।"

सिपाही ने ओवरकोट की जेब से लोहे की छोटी सी अंगूठी निकाली और फूंक मारकर उस पर चिपके तंबाकू और बर्फ के टुकड़े झाड़े। फिर अंगूठी को ओवरकोट के बाजू पर रगड़ा और वार्या की बिचली उंगली में पहना दी:

“ले पहन ख़ुशी से! जादूई अंगूठी है यह। देख कैसे चमक रही है!”

“ऐसा क्या जादू है इसमें, चाचा?” वार्या ने लजाते हुए पूछा।

“जादू यह है,” सिपाही ने जवाब दिया, “कि अगर तू इसे बिचली उंगली में पहनेगी तो सेहत अच्छी होगी, तेरी भी और कुज़्मा दादा की भी। और अगर अंगूठी अनामिका उंगली में पहनेगी,” सिपाही ने उसकी ठंड से लाल पडी उंगली खींची, “तो तेरे लिए कोई बहुत ही बड़ी ख़ुशी की बात होगी। या फिर अगर तू रंग-बिरंगी, चमत्कारों भरी दुनिया देखना चाहे तो अंगूठी तर्जनी में पहन लेना, ज़रूर देखेगी!"

“सच?” वार्या ने पूछा।

“तू इसकी बात पर भरोसा रख, मुनिया,” ओवरकोट के ऊंचे उठे कालर में से दूसरे सिपाही की भारी आवाज़ आई, “यह जादूगर है। सुनी हैं कभी जादू की बातें?”

“सुनी हैं।”

“बस यही बात है,” सिपाही हंस दिया। “लड़ाई में सुरंगों के मैदान मजे से पार कर जाता है।”

“शुक्रिया,” वार्या ने कहा और अपने गांव मोखोवोये भाग चली।

हवा चल पड़ी, बर्फ गिरने लगी - बहुत ही घनी-घनी, बड़े-बड़े फाहों सी। वार्या अंगूठी छूती जा रही थी। बार-बार उसे घुमाती और चमकते देखती।

“पर यह सिपाही चाचा ने छोटी उंगली का तो बताया ही नहीं,” उसने सोचा। “उसमें पहनने से क्या होगा? चलो, मैं छोटी उंगली में अंगूठी पहनकर देखती हूँ।”

उसने अंगूठी छोटी उंगली में पहन ली। उंगली पतली थी, अंगूठी उस पर टिकी नहीं, पगडंडी के किनारे बर्फ पर जा गिरी और फ़ौरन उसमें गहरी धंस गई।

वार्या की सांस ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे रह गई। वह हाथों से बर्फ हटाने लगी, लेकिन अंगूठी नहीं दिखी। वार्या की उंगलियां नीली पड़ गई। वे ठंड से इतनी अकड़ गईं कि मुड़ती ही नहीं थीं।

वार्या रो पड़ी। गुम गई अंगूठी! मतलब, अब कुज़्मा दादा की सेहत ठीक नहीं होगी, बहुत बड़ी ख़ुशी की बात भी नहीं होगी और वह रंग-बिरंगी चमत्कारों भरी दुनिया नहीं देख पाएगी। वार्या ने बर्फ में जहां अंगूठी गिरी थी, उस जगह देवदार की एक पुरानी टहनी गाड़ दी और घर चल दी। वह दस्ताने से आंसू पोंछती जा रही थी लेकिन वे फिर भी उमड़ आते और जम जाते। और इससे आंखों में चुभन और दर्द हो रहा था।

कुज़्मा दादा तंबाकू पाकर बहुत खुश हुए। सारा घर उन्होंने धुएं से भर दिया। अंगूठी के बारे में उन्होंने कहा:

“तू दुखी मत हो, पगली। जहां गिरी है, वहीं पड़ी होगी। तू सीदोर को कह देख। वह तुझे ढूंढ देगा।”

बूढ़ा चिड़ा सीदोर डंडे पर कुप्पे सा फूला सो रहा था। सारी सर्दियां सीदोर कुज़्मा दादा के घर में अपनी मर्जी से, मालिक की तरह रहता था। स्वभाव उसका ऐसा था कि वार्या तो क्या, दादा तक से अपनी बात मनवा कर रहता था। खिचड़ी वह उनकी तश्तरियों में से ही लेता और रोटी भी हाथ में से नोचता। और अगर उसे भगाते तो बुरा मान जाता, फूलकर कुप्पा हो जाता, लड़ने लगता और इतने गुस्से से चीं-चीं करता कि छत के नीचे आस-पास के चिड़े-चिड़ियां इकट्ठा हो जाते। पहले वे ध्यान से सुनते और फिर देर तक शोर मचाते रहते। वे सीदोर के बुरे स्वभाव की निंदा करते: घर में रहता है, ठंड नहीं सहता, भूखा नहीं रहता, तो भी इसे संतोष नहीं।

अगले दिन वार्या ने सीदोर को पकड़कर रूमाल में लपेट लिया और जंगल ले गई। बर्फ में से टहनी का बस सिरा ही दिख रहा था। वार्या ने सीदोर को टहनी पर बिठा दिया और उससे अनुरोध किया:

"तू ढूंढ दे न! शायद मिल जाए तुझे!"

लेकिन सीदोर ने बर्फ पर शकभरी तिरछी नज़र डाली और चिचियाया:

"वाह ची! वाह ची! मैं कोई बुद्ध हूँ? वाह ची! वाह ची!" सीदोर ने दोहराया। वह टहनी से फुदका और वापस घर उड़ चला।
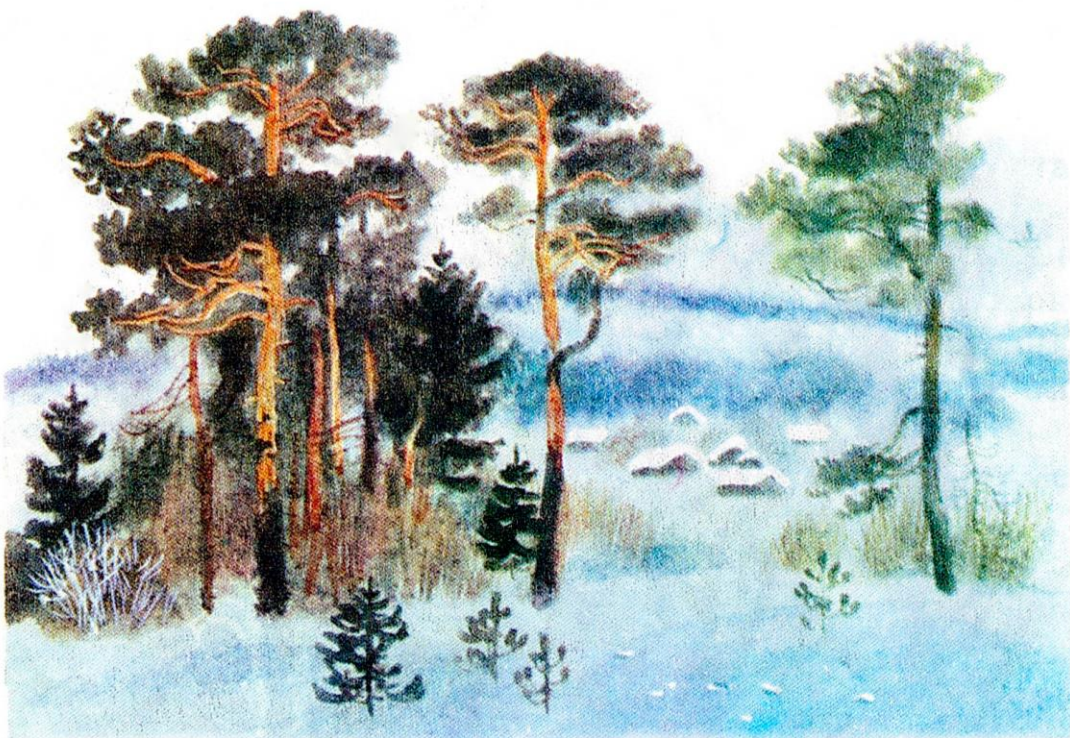
अंगूठी वैसे ही वहां पड़ी रह गई।

कुज़्मा दादा की खांसी ज़ोर पकड़ती जा रही थी। वसंत आते-आते वह अलावघर पर जा लेटे। वह बहुत कम ही वहां से उतरते और रह-रहकर पानी मांगते। वार्या उन्हें लोहे के कटोरे में ठंडा पानी देती।

बर्फीली आंधियां चलतीं और गांव के घरों के चारों आर ढेरों बफे जमा हो जाती।

जंगल में सनोबर बर्फ से लद गए थे और वार्या अब वह जगह नहीं ढूंढ़ पाती थी, जहां उसने अंगूठी गिरा दी थी। वह अक्सर अलावघर के पीछे छिपकर बैठ जाती। दादा पर तरस खाकर रोती और अपने को बुरा-भला कहती।

"बुद्धू कहीं की!" वह बुदबुदाती। "बड़ी शरारत सूझी थी, अंगूठी गिरा दी। ले इसका मजा! यह ले!"

अपने सिर पर मुट्ठियां मारकर वह अपने श्राप और दंड देती। और कुज़्मा दादा उससे पूछते:

"यह तू क्या शोर मचा रही है?"

“सीदोर को डांट रही हूँ,” वार्या जवाब देती। “ऐसा बदतमीज हो गया है। हर वक्त लड़ने को आता है।"

एक दिन सुबह-सुबह ही सीदोर खिड़की पर कूदने और शीशे पर चोंच मारने लगा। उससे वार्या की नींद खुल गयी। वार्या ने आंखें खोलीं और फ़ौरन ही भींच लीं। छत से एक के बाद एक लंबी-लंबी बूंदें गिर रही थीं। खिड़की से गरम-गरम धूप आ रही थी। कौवे कांव-कांव कर रहे थे।

वार्या ने बाहर झांककर देखा। गरम हवा के झोंके ने उसके बाल झंझोड़े।

“लो, वसंत रानी आ गई,” वार्या ने कहा।

पेड़ों की काली-काली टहनियां चमक रही थीं, छत पर पड़ी, बर्फ़ गीली हो गई थी और सरसर करती छत से फिसल रही थी। जंगल वसंत की ख़ुशी में बड़ मान से झूमता सा लगता था। वसंत रानी खेतों-मैदानों में बढ़ती जा रही थी। उसे खाई में झांकने भर की देर होती कि वहां कलकल करता पानी बहने लगता, धूप में चमचमाता। वसंत रानी बढ़ती जा रही थी और उसके हर पग के साथ जल-धाराओं का कलकल-स्वर ऊंचा ही ऊंचा होता जा रहा था।

जंगल में बर्फ काली पड़ गई। देवदार और चीड़ के कत्थई कांटे, जो जाड़ों में झड़ गए थे, बर्फ के नीचे से दिखने लगे। फिर ढेर सारी टहनियां निकल आईं - वे दिसंबर में बर्फीले तूफ़ानों से टूट गई थीं। फिर पिछले साल झड़ी पीली पत्तियां नज़र आने लगीं। कहीं-कहीं बर्फ के नीचे से ज़मीन निकल आई और बर्फ के आखिर बड़े-बड़े ढेरों के किनारे पहले फल खिल उठे।

वार्या ने जंगल में देवदार की वह टहनी ढूंढ ली जो उसने बर्फ में अंगूठी गिरने की जगह पर गाड़ दी थी। वह बड़ी सावधानी से पुरानी पत्तियों, कठफोड़वों के फेंके चिलगोज़ों, सूखी टहनियों और पुरानी काई को हटा-हटाकर अंगूठी ढूंढने लगी। एक काली पत्ती के नीचे झिलमिलाहट सी हुई। ख़ुशी के मारे वार्या की चीख निकल गई। पैरों के बल बैठकर उसने देखा - यह लोहे की अंगूठी ही थी! उसे जरा भी जंग न लगा था।

वार्या ने अंगूठी उठाई, बिचली उंगली में पहनी और घर भाग चली।

दूर से ही उसने कुज़्मा दादा को देख लिया। वह घर से बाहर निकल आए थे और दीवार के पास बनी मिट्टी की मुंडेर पर बैठे थे। तंबाकू का नीला धुआं दादा के ऊपर सीधे आसमान तक उठ रहा था, मानो कुज़्मा दादा वसंती धूप में सूख रहे हों और उनके ऊपर भाप उठ रही हो।

"देख री, शैतान," दादा ने कहा, "तू बाहर भाग गई और दरवाज़ा बंद करना भूल ही गई। घर में वसंती हवा फैल गई और बीमारी ने फ़ौरन मेरा पीछा छोड़ दिया। अभी थोड़ा तंबाकू पी लूं, फिर कुल्हाड़ी लेके लकड़ी चीरता हूं। हम अलावघर गरम करेंगे और रई की रोटियां पकाएंगे।"

वार्या हंस पड़ी। उसने दादा के झबरीले, पके बालों पर हाथ फेरा और बोली:

"शुक्र है अंगूठी का! उसने तुम्हें ठीक कर दिया, दादा!"

वार्या सारे दिन अंगूठी बिचली उंगली में पहने रही ताकि दादा की बीमारी पूरी तरह से चली जाए। बस शाम को ही बिस्तर में लेटते समय उसने अंगूठी बिचली उंगली से उतारकर अनामिका में पहन ली। इसके बाद बहुत ही बड़ी ख़ुशी की बात होनी चाहिए थी। लेकिन कुछ हो ही नहीं रहा था। वार्या इंतज़ार करती रही, करती रही और ऐसे ही सो गई।

सुबह तड़के ही वह उठ बैठी और कपड़े पहनकर बाहर चली गई।

धरती पर उषा का उजाला फैल रहा था। चारों ओर खामोशी छाई हुई थी। आकाश के किनारे अभी भी आखिरी तारे चमक रहे थे। वार्या जंगल की ओर चल दी। जंगल के किनारे पंहुचकर वह रुक गई। यह क्या बज रहा है जंगल में? मानो कोई संभल-संभलकर घंटियां बजा रहा हो।

वार्या झुकी, कान लगाकर सुनने लगी और दंग रह गई: गुलचांदनी के सफ़ेद-सफ़ेद फूल धीरे-धीरे लहरा रहे थे, उषा के स्वागत में सिर हिला रहे थे और चांदी के तारों से झनझना रहे थे। चीड़ की चोटी पर कठफोड़वे ने पांच बार चोंच मारी।

"पांच बजे हैं," वार्या ने मन ही मन कहा। "कितनी भोर है और केसी शांति है चारों ओर!"

उसी क्षण ऊपर कहीं पेड़ की शाखा पर उषा के सुनहरे उजाले में पीलक पंछी गा उठा।

वार्या मुंह बाए खड़ी सुन रही थी और मुस्कराती जा रही थी। प्यारी-प्यारी गरम हवा का तेज़ झोका आया, वार्या के पास ही कहीं सरसराहट सी हुई। झाड़ियां झूमने लगीं और झुमकों जैसे उनके फूलों का पीला पराग झड़ा। कोई अनदेखा टहनियों को धीमे से हटाता हुआ वार्या के पास से निकल गया। कोयल उसके स्वागत में सिर झुका-झुकाकर कूकने लगी।

“यह कौन गुज़रा? मैं तो देख ही नहीं पाई!” वार्या ने सोचा।

वह नहीं जानती थी कि उसके पास से वसंत रानी गुजरी है।

वार्या खिलखिलाकर हंसी। उसकी हंसी सारे जंगल में गूंज गई। वह घर भाग चली। उसका मन ख़ुशी से भर उठा था, नाच-झूम रहा था।

दिन पर दिन वसंत का रंग चढ़ता जा रहा था। वसंती धूप इतनी तेज़ थी कि कुज़्मा दादा की आंखें सिकुड़-सिमट सी गईं, लेकिन उनमें सदा मुस्कान बनी रहती थी। फिर मानो किसी ने जंगलों-मैदानों में, खेतों-चरागाहों में, नालों-खड्डों में जादूई पानी छिड़क दिया - एकाएक चारों ओर हज़ारों-हज़ार रंग-बिरंगे फूल खिल उठे।

वार्या तर्जनी में अंगूठी पहनना चाहती थी, ताकि चमत्कारों भरी दुनिया देख सके। लेकिन उसने इन सब फूलों और भोजवक्षों की चिपचिपी कोंपलों को, निर्मल आकाश और चमकते सूरज को देखा, मुर्गों की बांगें, पानी का कलकल-स्वर और खेतों-मैदानों में गाती चिड़ियों के गीत सुने और अंगूठी तर्जनी में नहीं पहनी।

“फिर कभी देखा जाएगा,” वार्या ने सोचा। “दुनिया भर में हमारे मोखोवोये से अच्छी जगह और कोई नहीं हो सकती। कुज़्मा दादा ऐसे ही तो नहीं कहते कि हमारे यहां सच्चा स्वर्ग है और सारे संसार में इतनी अच्छी जगह और कहीं नहीं!”

सर्गेई बोर्डयुग

ग्राफिक कलाकार

मरमंस्क क्षेत्र में जन्म, 29 नवंबर 1953

बोर्डयुग का जन्म एक नौसेना अधिकारी के परिवार में हुआ था। 1979 में, उन्होंने लेनिनग्राद कला अकादमी से स्नातक की उपाधि प्राप्त की, जहाँ उन्होंने जी. एपिफ़ानोव के अधीन अध्ययन किया। उनके चित्रों वाली पहली पुस्तक 1979 में डेटगिज़ द्वारा प्रकाशित की गई थी। वह सेंट पीटर्सबर्ग में काम करते हैं और रहते हैं।

Konstantin Paustovsky

The Magic Ringlet

Fairy tale

Illustrations from Sergei Bordyug

Edited by Arvind Gupta, Hendrik Westermann.
Layout by Hendrik Westermann, Evgeny Spirin.

International project:
"Mini Progress and Mini Raduga".